संगम Impact Factor : 4.553 Website : www.ginajournal.com ISSN : 2321-8037 SANGAM
A Peer Reviewed International Refereed Journal विशेषांक–समकालीन हिन्दी साहित्य और विमर्श Vol. 11, Issue 4
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक

Page No. 784-792

शंकर शेष के 'बाढ़ का पानी' नाटक में निहित दलित विमर्श

सारांश – नाट्य साहित्य की एक सशक्त विधा है। नाटकों के माध्यम से दलितों की वास्तविक स्थिति का सफलतापूर्वक चित्रण किया जाता है क्योंकि नाटक दृश्य विधा है इसके प्रस्तुतीकरण द्वारा लोग पात्रों के साथ अपना तादाम्य स्थापित कर लेते हैं और उसी पात्र में उन्हें अपनी छवि प्रतिबिम्बित होती है। यही कारण है कि डॉ. शेष ने अपने नाटकों के पात्रों के माध्यम से जनचेतना जागृत करने का प्रयास किया है तथा दलितों को यह संदेश दिया है कि उन्हें पुरानी परंपराओं को तोड़कर एक जुट और संगाठित होकर जनचेतना जागृत करनी होगी। उच्च वर्ग द्वारा किए जाने वाले शोषण के विरुद्ध एकता व संघर्ष के बल पर एक नवीन टीले का निर्माण करना होगा, तभी उनका विकास संभव है।

बीज शब्द – दलित, दलित विमर्श, वर्ण व्यवस्था।

हिन्दी में 'विमर्श' शब्द अंग्रेजी के ''Discourse'' शब्द से आया है जिसका अर्थ सुदीर्घ तथा गंभीर चिंतन से लिया जाता है। 'विमर्श' शब्द को साधारण अर्थ में विचार विवेचन तथा परीक्षण के रूप में लिया जाता है। किसी भी समस्या या परिस्थितियों को देखकर उनके प्रति मानसिक, सांस्कृतिक, वैचारिक धारणाओं का समाहार करते हुए पूर्ण रूप से चिंतन करना तथा उसे समझने का प्रयास करना 'विमर्श' है।

समकालीन साहित्य तत्कालीन समाज का यथार्थ चित्रण है। समाज में प्रचलित विभिन्न विमर्शों की अभिव्यक्ति समकालीन साहित्य की विधाओं में दृष्टिगत होती है चाहे वह किसान विमर्श हो, किन्नर विमर्श हो, आदिवासी विमर्श हो, स्त्री विमर्श हो या फिर दलित विमर्श ही क्यों न हो।

'दलित' शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत धातु 'दल' से हुई है जिसका अर्थ फटना, खंडित होना, द्विधा होना है। इसमें हर वह व्यक्ति आता है जिसका शोषण–उत्पीड़न हुआ हो। 'दलित' शब्द को विभिन्न साहित्यकारों द्वारा परिभाषित किया गया है –

रामचंद्र वर्मा के शब्दों में – ''मसला हुआ, मर्दित, दबाया, रौंदा या कुचला हुआ, जिसे समाज की मूल धारा से वंचित किया गया है, वह दलित है।''[1]

हिन्दी मानक कोश के अनुसार – ''दलित शब्द का अर्थ है रौंदा हुआ मर्यादित, कुचला हुआ पदाक्रांत वर्ग, हिंदुओं में शूद्र, जिन्हें अन्य जातियों के समान अधिकार प्राप्त नहीं है।''[2]

डॉ. वानखेड़े के अनुसार – ''दलित लेखकों द्वारा, दलितों पर लिखा गया साहित्य ही 'दलित साहित्य' है।''[3]

कई विद्वानों का मानना है कि **''दलित साहित्य सही मायने में वह साहित्य है, जो दलितों ने अपने ज्ञान, अपने तजुरबे, अपनी कठिनाइयों, अपनी पीड़ा के आधार पर लिखा है।''[4]**

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि दलित साहित्य सभी तरह की वर्ण–व्यवस्था, जात–पाँत, ऊँच–नीच व भेदभाव के दायरे से ऊपर उठ उस व्यक्ति की पीड़ा, वेदना, कुढ़न, अन्याय, अत्याचार व अपमान आदि के विरुद्ध किये गये विद्रोह का परिणाम है अर्थात् दलित साहित्य सामंती मूल्यों और सवर्णों के उत्पीड़न के खिलाफ दलितों द्वारा रचित साहित्य है। **कमलेश्वर ने भी कहा है–''जातीय स्वाभिमान को छोड़कर इस साहित्य में भारत के दलित और वंचित मनुष्यों की अस्मिता की आवाज़ है।''[5]** इस साहित्य का मूल स्वर आत्मवेदना, निषेध, विद्रोह, संघर्ष और उत्थान है। **मोहनदास नैमिशराय के अनुसार – ''शोषक वर्ग के खिलाफ अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करते हुए समाज में समता, बंधुता तथा मैत्री की स्थापना करना ही दलित साहित्य का उद्देश्य है।''[6]** दलित साहित्यकारों अपने उद्देश्य से भ्रमित नहीं हुए, बल्कि उन्होंने अपनी लेखनी व अनुभवों के माध्यम से हिन्दी साहित्य के विभिन्न विधाओं में उपस्थित साहूकारों, जमींदारों, सेठों तथा सवर्णों द्वारा किए जाने वाले अन्यायों तथा अत्याचारों पर अपनी लेखनी चलाई है।

समकालीन नाटककारों में डॉ. शंकर शेष का नाम अग्रणी है। वह हिन्दी नाट्य साहित्य के सशक्त हस्ताक्षर माने जाते हैं। उन्होंने केवल नाटकों का लेखन, निर्देशन एवं मंचन ही नहीं किया अपितु समसामयिक संदर्भों, विषयों, आम जनता की समस्याओं, विवादों, प्रश्नों व संघर्षों आदि के माध्यम से वर्तमान जीवन की व्याख्या भी की है।

डॉ. शंकर शेष के नाट्य–साहित्य का कथ्य किसी विचारधारा का गुलाम नहीं है अपितु पुरानी परंपराओं को विस्मृत कर समकालीन जीवन की त्रासदी, उथल–पुथल, विद्रुपताओं, अंतर्विरोध से युक्त जीवन, शोषित मनुष्य की पीड़ा, युवा विद्रोह, मानव की स्वार्थ–वृत्ति, प्रसिद्धि की महत्वाकांक्षा, रिश्तों का बनावटी व अधूरापन, राजनीति व शिक्षा में व्याप्त भ्रष्टाचार तथा हमारी संस्कृति व सामाजिक–सांस्कृतिक मूल्यों को दूषित करने वाले प्रमुख कारक जैसे–जातिवाद, वर्ग–विच्छेद व छुआछूत की भावना आदि सामाजिक विसंगतियों का चित्रण उनके नाटकों के केन्द्रीय विषय रहे हैं।

डॉ. शंकर शेष तत्कालीन युगीन परिस्थितियों से पूर्णतः परिचित थे। वह भली प्रकार से जानते थे कि जातिवाद, सांप्रदायिकता व छुआछूत आदि की भावना ने हमारे संपूर्ण देश को खोखला कर दिया है। मानव सभ्यता का इतना विकास होने के पश्चात् भी समकालीन युग जातिवाद, छुआछूत, आपसी फूट, अनुशासनहीनता, स्वार्थ, हिंसा व शूद्र जाति के लोगों का शोषण करना आदि की भावना से मुक्त नहीं हुआ।

जाति व्यवस्था के नाम पर होने वाले अत्याचारों का यथार्थ चित्रण डॉ. शेष के 'बाढ़ का पानी' नाटक में पूर्णतः परिलक्षित होता है। इस नाटक का कथ्य समाज में फैली छुआछूत की भावना को उजागर करता है। यह नर्मदा नदी पर बसे एक गाँव की कथा है जिसमें लक्ष्मी, छीतू, गनपत, चंदन, नवल, बटेसर आदि दलित जाति के लोग हैं, जिनका मातादीन, ठाकुर एवं पंडित जैसे उच्च जाति के लोगों द्वारा शोषण किया जाता है, उन्हें हीन दृष्टि से देखा जाता है। नाटक का पात्र 'गनपत' स्वयं अपनी स्थिति बताते हुए कहता है–

"हमें गाँव वालों ने दूर टीले पर बसा रखा है – गाँव से बिल्कुल दूर, जिससे हमारी छाया भी किसी को छू सके। हमारा चेहरा देखकर किसी की इकादसी और चौथ खराब न हो।"[7]

हमारे समाज में यह मान्यता है कि कोई भी दलित या निम्न जाति के व्यक्ति का मंदिर में प्रवेश करना या पूजा करना वर्जित है। इसी कारणवश जब चमार जाति का 'नवल' मंदिर में पूजा करना चाहता है तो उसके साथ अत्याचार किया जाता है। उसे मंदिर के अंदर प्रवेश नहीं दिया जाता। स्वयं उसकी माँ 'लछमी' के संवाद इस बात के सशक्त प्रमाण हैं –

"पर इन्हीं गाँव वालों ने तो हमें गाँव से निकाल दिया था पिछले साल। नवल ने कौन सी गलती की थी? अरे भगवान के मंदिर में पूजा ही तो करनी चाही थी। वह कहता था, भगवान सबके हैं, दया के सागर हैं, इसलिए सबसे अधिक हरिजनों के हैं। पर पूरा गाँव हमारे खिलाफ लाठी लेकर खड़ा हो गया था। नवल को बेहद मारा और हमें गाँव से दूर यहाँ बसना पड़ा।"[8]

आज भी सवर्ण जाति के लोग मंदिर पर अपना वर्चस्व स्थापित किए हुए हैं और मंदिर में शूद्रों का प्रवेश निषेध है। यदि कोई ऐसा प्रयास भी करता है तो उसे कठोर दंड दिया जाता है। 'पंडित' और 'छीतू' के संवादों से स्पष्ट होता है –

"तुम्हारे बेटे ने जो किया धरम का नाश। पच्चीस हरिजनों को लेकर जो भगवान के मंदिर में घुस गया भगवान को छू लिया।"

दुर्भाग्यवश 'नवल' मंदिर तक पहुँच भी जाता है तो गाँव में हो रहे प्रलय का भागीदार तथा देवताओं के रुष्ट होने का कारण भी उसे ही माना जाता है। यथा –

"नवल के कारण यह बाढ़ आई है। न वह मंदिर में जाता, और न देवता नाराज होते, और न यह बाढ़ आती।"[9]

उपर्युक्त पंक्तियों द्वारा स्पष्ट है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भी हमारे देश व समाज की स्थिति में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। इस समकालीन युग में भी जाति–पाँति व अस्पृश्यता की भावना अपनी चरम–सीमा पर है। दलित व निम्न जाति के लोगों के साथ जिस प्रकार का व्यवहार किया जाता है उससे इंसानियत भी शर्मसार होती है, उदाहरणार्थ –

''क्या यह इंसानियत पर कलंक नहीं है कि आदमी गधों, घोड़ों और बिल्ली–कुत्तों को तो छूने में तो घृणा न करे, पर आदमी को छूने में घिन हो।''[10]

हमारे सभ्य समाज में दलित व निम्न जाति के लोगों का पढ़ना–लिखना आज भी निषेध है। उक्त उदाहरण द्रष्टव्य है–

''इसलिए तो मैं कहता था, कि इतना मत पढ़ाओ। पढ़ना ठाकुरों का काम है, भौजी! हम चमारों का नहीं। हमारी कुंडली में तो जूते बनाना और जूते खाना ही लिखा है।''[11]

दलित वर्ग भी इस बात से पूर्णतः परिचित है कि उनके शिक्षित होने की बात करना भी अपराधजन्य है। अगर वह गाँव या उच्च जाति के लोगों के हित की बात भी करें, तब भी उसकी कोई नहीं सुनता और उसके साथ अमानवीय व्यवहार ही किया जाता रहा है। जब संपूर्ण गाँव बाढ़ की चपेट में आने लगता है तो 'नवल' सभी लोगों को गाँव खाली कर दो यह समझाने का प्रयास करता है। 'गनपत' के शब्दों में –**''आज सुबह से नवल लोगों को समझाने की कोशिश कर रहा है कि नर्मदा का पानी बढ़ेगा.....पर किसी ने उसकी नहीं सुनी। यही बात ऊँची जाति का आदमी कहता तो सब सुनते।''[12]**

'नवल' चमार जाति का होने के बाद भी, अत्याचारों को सहने के बावजूद भी ठाकुर व उसकी बेटी कावेरी को बचाने का भरसक प्रयास करता है परंतु फिर भी ठाकुर उसे अपशब्द कहता है और पिटवाता है। उदाहरणार्थ –

''ठाकुर यही कहता रहा – खबरदार, जो तू घर में घुसा! गोली मार दूँगा...।

नवल – दद्दा, रग्घू और चंदू ने मुझे मारा है। कहने लगे बाढ़ का फायदा उठाकर तू कावेरी को उड़ा ले जाना चाहता है।''[13]

दलित वर्ग सदैव से ही शोषित रहा है। वह तो केवल अत्याचार सहने हेतु ही पैदा हुआ है। जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्त्ति करने के लिए भी उसे संघर्ष करना पड़ता है, उसके लिए अपने व अपने परिवार के लिए दो वक्त की रोटी, दो जोड़ी कपड़ा आदि की व्यवस्था करना भी किसी चुनौती से कम नहीं है। यथा –

''साधारण किसान को मजहब, जात–पाँत के झगड़ों के लिए फुरसत कहाँ है? दो जून की रोटी जुटाने में ही उसकी कमर टूट जाती है। ज़हर तो वह लोग फैलाते हैं, जिनके पास पैसा है, फुरसत है और जो लगे दूसरों के बीच झगड़ा पैदा कर अपना उल्लू सीधा करते हैं।''[14]

बाढ़ जैसी प्राकृतिक विपदा के समय में भी उच्च जाति के यह लोग चाहे व गनपत हो, मातादीन, पंडित या फिर ठाकुर ही क्यों न हो, जातीयता, अस्पृश्यता, वर्ग–संघर्ष आदि से ऊपर नहीं उठ पाते हैं। इसकी नींव घृणा व अंधविश्वास पर टिकी है। जिसका परिणाम यह होता है कि सब डूब मरने के भय से

ग्रसित हैं। स्वयं नाटक का नायक 'नवल' उच्चवर्ग के लोगों की मानसिकता का वर्णन करता हुआ कहता है–

''अगर इस गाँव में थोड़ा सहयोग होता या सहकारिता की ही भावना होती तो यह मुसीबत आती ही क्यों?''[15]

स्वतंत्रता प्राप्ति के इतने दशक के पश्चात् भी हमारा समाज मध्यकालीन जर्जर रूढ़ियों से मुक्त नहीं हो पाया है, जिसके कारण मनुष्यता का विकास असंभव है। हमारी सामाजिक व्यवस्था का वास्तविक चेहरा इस उद्धरण द्वारा शंकर शेष ने प्रस्तुत किया है –

''हमारी पुरानी जाति व्यवस्था एक ऐसा पुराना किला है जो हम में हमेशा एक सुरक्षा का भ्रम पैदा करता रहा है, हम उसी में छिपकर रहना चाहते हैं, पर उसमें हमारे मनुष्यत्व का विकास नहीं होता।''.....

इसके लिए हमारी पूरी समाज–रचना जिम्मेदार है। हमारा समाज जन्म से ही कुछ लोगों को धर्म की व्याख्या अपने स्वार्थ के अनुसार करने की छूट देकर अत्याचार करने का अधिकार दे देता है। कुछ लोगों से केवल दबे रहने और दूसरों के अत्याचार सहने की माँग करता है।''[16]

इन अत्याचारों का प्रमुख कारण हमारी सामाजिक अशिक्षा ही नहीं अपितु हमारे समाज के राजनीतिक–सांस्कृतिक समूहों पर अशिक्षित, अर्धशिक्षित और सामाजिक रूप से अर्धसभ्य व्यक्तियों का हावी होना है।

शंकर शेष ने इस नाटक के माध्यम से समाज में व्याप्त छुआछूत, अस्पृश्यता तथा जात–पाँत जैसी कुप्रथाओं से संबंधित कई प्रश्न उठाए हैं, साथ ही इस जातीयता, कट्टरता व अंधविश्वास जैसी कुप्रवृत्तियों को जड़ से समाप्त करने हेतु कुर्बानी व संघर्ष की अनिवार्यता पर भी बल दिया है। डॉ. शेष दलित वर्ग के साथ हो रहे मतभेदों को समाप्त करने हेतु सड़ी–गली मान्यताओं के विरुद्ध संघर्ष करने के लिए प्रतिरोधी समूहों से टकराव करने की सीख देते हैं उनके अनुसार यह टकराव ही दलित वर्ग के लोगों में चेतना जागृत कर सकता है और यह टकराव नाटक के नायक 'नवल' (जो गाँधीवादी विचारधारा से प्रभावित शिक्षित व मानवीय गुणों से परिपूर्ण संघर्षशील व्यक्ति है) के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। नवल के शब्दों में –

''पंडित, सदियों की मानसिक गुलामी तोड़ने में बहुत तकलीफ होती है।.....गहरी जड़ों वाले अंधविश्वास को मिटाने के लिए कुर्बानी करनी ही पड़ती है, लड़ना पड़ता है।''[17]

नाटक का नायक 'नवल' संपूर्ण गाँव के लोगों को बाढ़ से बचाने हेतु अनेकानेकों प्रयास करता है। वह बाढ़ के बहाव के साथ बहना नहीं चाहता है, बल्कि बहाव को मोड़ना चाहता है जिसके लिए वह अथाह संघर्ष करता है। जब उसकी माँ उसे यह सब कुछ छोड़ शहर जाने को कहती है तो वह स्वयं कहता है –

''नहीं माँ, मैं शहर नहीं जाऊँगा। यहाँ मेरी जान चली चली जाए, तो भी नहीं जाऊँगा। मैंने भागना नहीं सीखा है।''[18]

'नवल' का यह कथन उसकी पलायनवादिता नहीं, अपितु संघर्षशीलता को दर्शाता है। ऐसा लगता है मानो नाटककार ने स्वयं 'नवल' के माध्यम से अपनी विचार–पद्धति को प्रस्तुत किया हो।

'बाढ़ का पानी' नाटक के माध्यम से डॉ. शेष ने छुआछूत, साम्प्रदायिकता, आपसी फूट, स्वार्थ, अनुशासनहीनता, हिंसा तथा जातिवाद से परिपूर्ण ऐसी अदृश्य बाढ़ का वर्णन किया है जो प्राणघातक है और उससे हम चारों ओर से घिरे हुए हैं। नाटक का पात्र 'बटेसर' के शब्द इस अस्पृश्यता की बाढ़ का वर्णन करते हैं, यथा –

''चारों ओर मनुष्य मनुष्य को अस्पृश्य समझता है।.....मैं कहता हूँ कि यह छूआछूत हमारे देश की छाती पर सबसे बड़ा घाव है। दूसरे लोग घाव का इलाज करते हैं, पर हम उसे पाल रहे हैं। इस बाढ़ ने हमें सबक दिया है। पंडित, एक इससे भी भयानक बाढ़ हमारे देश को घेर रही है, यह है आपसी फूट की! साम्प्रदायिकता की। अनुशासनहीनता की। स्वार्थ की और हिंसा की। यह बाढ़ हमें दिखाई नहीं देती पर हम घिर गए हैं... ।''[19]

डॉ. शेष के अनुसार इस विकराल बाढ़ से बचने का मात्र एक ही उपाय है – संघर्ष, एकता, समता व सद्भाव।

अंततः नाटककार ने सांकेतिक रूप में समाज से इन सभी कुप्रवृत्तियों को समाप्त करने अर्थात् इस बाढ़ का नाश करने हेतु सकारात्मक शक्तियों को एक जुट कर अहिंसा, सत्यता, सद्भाव, सहयोग व संगठन के टीले का निर्माण किया है। 'नवल' के अथक प्रयासों के पश्चात् नाटक के अंत में उच्च जाति के पंडित, ठाकुर स्वयं को बचाने के लिए इस भेदभाव को भूल जाते हैं और दलित जाति के गाँव में शरण ले लेते हैं। 'नवल' के शब्द उसकी सफलता की कहानी बखान करते हैं, यथा –

''आज मैं बहुत खुश हूँ। हर आदमी अपनी जात भूल रहा है, धरम भूल रहा है, आपस का बैर भूल रहा है, एक ही फिकर है कि वह दूसरे को कैसे बचाए। सब एक साथ खा रहे हैं, एक साथ बैठ रहे हैं! मैं तो चाहता हूँ , चंदा, कि यह बाढ़ हमारे दिलों में जमा हुआ हजारों साल का सब कूड़ा–कचरा बहा दे। इस बाढ़ के साथ ही लोगों के मन से जात–पाँत का बुखार उतर जाए।''[20]

नाटक का सुखद अंत होता है और नाटककार दलित जाति के लोगों के हृदय में एक नए सवेरे व नई चेतना का संचार करता है, उदाहरणार्थ –

''जिस प्रकार इस टीले पर मृत्यु के भय के कारण धीरे–धीरे एक हो गए, उसी तरह हम सुख में, समृद्धि में, संघर्ष में भी एक रहें। यह टीला चंदन का दीप बने।''[21]

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि समकालीन दलित साहित्य पूर्णतः परिवर्तित साहित्य है। इस दलित साहित्य में नाटकों का भी विशेष महत्त्व है। समकालीन दलित साहित्य आज नई ऊँचाइयों को छू रहा है तथा इसमें पुरानी रूढ़ियों को बदलने की क्षमता है। आज दलित वर्ग में एक नयी चेतना का उदय हुआ है और दलितों ने अपने अधिकारों के प्रति संघर्ष करना प्रारंभ कर दिया है। सदियों से शोषण को सहता हुआ आज दलित वर्ग अपनी स्वतंत्रता, समानता व सम्मान हेतु संघर्षरत हैं।

डॉ. शंकर शेष दलित नाटककार तो नहीं थे परंतु उनके नाटकों में सामाजिक कुप्रवृत्तियों का पुरजोर विरोध हुआ है। उन्होंने अपने 'बाढ़ का पानी' नाटक के माध्यम से दलित वर्ग के लोगों में संघर्ष चेतना का संचार किया तथा सद्भाव व एकता के बल पर, अहिंसा के मार्ग को अपनाते हुए संपूर्ण समाज में परिवर्तन कर एक नए समाज की स्थापना की।

डॉ. अंशु बत्रा
सहायक अध्यापक,
राम चमेली चड्ढा विश्वास गर्ल्स कॉलेज, गाज़ियाबाद,
दूरभाष – 9555119044
ईमेल – anshubatra.dei@gmail.com

संदर्भ सूची

1. संपादक रामचंद्र वर्मा, मानक हिन्दी कोश, पृ0 35
2. संपादक रामचंद्र शुक्ल, संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर, पृ0 468
3. डॉ. सुरेश मारुतिराव, हिन्दी और मराठी दलित साहित्य एक तुलनात्मक अध्ययन
4. पूर्णिमा सत्यदेव, हिन्दी अनुशीलन, मार्च 2003, पृ0 30
5. निकाय पत्रिका, कमलेश्वर का भाषणः दलित साहित्य सम्मेलन औरंगाबाद, फरवरी–मार्च 1979, नागपुर, पृ0 11
6. पूर्णिमा सत्यदेव, हिन्दी अनुशीलन, मार्च 2003, पृ0 31
7. हेमंत कुकरेती, शंकर शेष (समग्र नाटक भाग 2), 'बाढ़ का पानी', पृ0 56
8. हेमंत कुकरेती, शंकर शेष (समग्र नाटक भाग 2), 'बाढ़ का पानी', पृ0 59
9. हेमंत कुकरेती, शंकर शेष (समग्र नाटक भाग 2), 'बाढ़ का पानी', पृ0 61
10. हेमंत कुकरेती, शंकर शेष (समग्र नाटक भाग 2), 'बाढ़ का पानी', पृ0 78
11. हेमंत कुकरेती, शंकर शेष (समग्र नाटक भाग 2), 'बाढ़ का पानी', पृ0 56
12. हेमंत कुकरेती, शंकर शेष (समग्र नाटक भाग 2), 'बाढ़ का पानी', पृ0 60
13. हेमंत कुकरेती, शंकर शेष (समग्र नाटक भाग 2), 'बाढ़ का पानी', पृ0 61
14. हेमंत कुकरेती, शंकर शेष (समग्र नाटक भाग 2), 'बाढ़ का पानी', पृ0 64
15. हेमंत कुकरेती, शंकर शेष (समग्र नाटक भाग 2), 'बाढ़ का पानी', पृ0 62
16. हेमंत कुकरेती, शंकर शेष (समग्र नाटक भाग 2), 'बाढ़ का पानी', पृ0 85
17. हेमंत कुकरेती, शंकर शेष (समग्र नाटक भाग 2), 'बाढ़ का पानी', पृ0 60
18. हेमंत कुकरेती, शंकर शेष (समग्र नाटक भाग 2), 'बाढ़ का पानी', पृ0 60

19. हेमंत कुकरेती, शंकर शेष (समग्र नाटक भाग 2), 'बाढ़ का पानी', पृ0 89
20. हेमंत कुकरेती, शंकर शेष (समग्र नाटक भाग 2), 'बाढ़ का पानी', पृ0 69
21. हेमंत कुकरेती, शंकर शेष (समग्र नाटक भाग 2), 'बाढ़ का पानी', पृ0 90
22. एन सिंह, दलित साहित्य : समकालीन परिदृश्य
23. www. Hindi journal.com

————————